मुगलों की दक्कन नीति

मुगलों ने दक्कन में एक सुनिश्चित नीति का अवलम्बन किया। मुगल वंश के आरंभिक दो शासकों बाबर तथा हुमायूँ को दक्षिण भारत की ओर ध्यान देने का अवसर नहीं मिला अतएव इस नीति का आरंभ अकबर के शासन काल में हुआ। सोलहवीं शताब्दी के अंतिम दशक तक अकबर द्वारा उत्तरी एवं मध्य भारत की विजय का काम पूरा हो चुका था चूँकि अकबर सारे उपमहाद्वीप को एक छत्र साम्राज्य के अधीन लाना चाहता था इसलिये अब दक्षिणी राज्यों का विजय अवश्यंभावी हो गया इसके अतिरिक्त दक्षिणी सागर तट पर पुर्तगाली लुटेरों का उत्पात काफी बढ़ा हुआ था। उस क्षेत्र के राज्य इनका सामना करने में असमर्थ थे। अतः अकबर उस क्षेत्र में मुगल सत्ता का विस्तार कर पुर्तगालियों पर नियंत्रण करना चाहता था। इन सब के साथ दक्षिण के राज्य व्यापारिक केन्द्रों के तौर पर भी मुगल साम्राज्य की समृद्धि में योगदान दे सकते थे। परिस्थितियाँ भी अकबर के अनुकूल थी क्योंकि 1565 ई० में तालीकोट के युद्ध के पश्चात् विजयनगर का पतन हो चुका था और शेष दक्षिणी राज्य भी पारस्परिक युद्ध में कमजोर हो चुके थे।

उस समय दक्षिण में चार महत्वपूर्ण राज्य थे, खानदेश, अहमदनगर, बीजापुर तथा गोलकुण्डा। अकबर ने पहले इन चारों राज्यों के पास दूत भेजकर इनके समक्ष मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों के आधार पर संधि करने का प्रस्ताव रखा। केवल खानदेश ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया। खानदेश की सीमा अकबर के राज्य से मिलती थी साथ ही गुजरात अभियान के समय मुगल सेनायें खानदेश की ओर बढ़ी थी। अतः खानदेश के शासक राजा अली खाँ ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली।

अहमदनगर राज्य ने अकबर का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया अतः अकबर ने उसके विरुद्ध शक्ति प्रयोग का निश्चय किया।

इस समय अहमदनगर में उत्तराधिकार का युद्ध चल रहा था। एक पक्ष ने मुगलों का समर्थन चाहा और अकबर को सैनिक हस्तक्षेप का अवसर मिल गया। 1595ई. में दक्षिणी अभियान आरंभ हुआ। चाँद बीबी के नेतृत्व में अहमदनगर ने मुगलों का विरोध किया। युद्ध अनिर्णयात्मक रहा और 1596 में दोनों के बीच सन्धि हुई। मुगलों ने बहादुरशाह को शासक स्वीकार किया। इसके बदले मुगलों को बरार का प्रांत प्राप्त हुआ और अहमदनगर ने मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली। लेकिन दोनों के बीच तनाव बना रहा। इसी बीच चाँद बीबी की हत्या कर दी गई। उसके विरोधियों ने पुनः मुगलों के साथ संघर्ष छेड़ दिया। 1600ई. में मुगलों ने राजधानी अहमदनगर एवं बालाघाट के क्षेत्र पर अधिकार कर लिया लेकिन अहमदनगर का शेष क्षेत्र एक स्वतंत्र राज्य के रूप में अभी भी बना रहा।

इसी बीच खानदेश के नये शासक मीरन बहादुर ने मुगलों की सत्ता का परित्याग कर दिया और असीरगढ़ का दुर्ग मुगलों को सौंपने की मांग को ठुकरा दिया। अतः अकबर ने स्वयं दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। 1601 में अकबर ने असीरगढ़ पर अधिकार कर लिया। खानदेश को मुगल राज्य में मिला लिया गया। अगले ही वर्ष सलीम के विद्रोह के कारण अकबर दक्षिण अभियान स्थगित कर उत्तर भारत लौट गया।

जहाँगीर के राज्यारोहण के समय दक्षिणी राज्यों की संख्या तीन रह गई थी जिसमें अहमदनगर की स्थिति खराब थी। लेकिन इसी समय मलिक अम्बर वहाँ का प्रधानमंत्री बना जो एक संगठित अहमदनगर का रूप चाहता था। इस संदर्भ में उसने दक्षिण के मुगल सेनापतियों के आपसी विरोध का लाभ उठाकर अहमदनगर के खोये हुये क्षेत्रों पर पुनः अधिकार कर लिया। इसके साथ ही उसने बीजापुर के सुल्तान एवं मराठा सरदारों की सहायता से मुगलों के विरुद्ध छापामार युद्ध जारी रखा। आरंभिक असफलता के बाद राजकुमार खुर्रम को 1618 ई. में अहमदनगर

के विरुद्ध सफलता प्राप्त हुई। उसने मलिक अम्बर को संधि के लिए बाध्य किया। मुगलों को पुनः जीते गये प्रदेश (बरार) वापस दे दिये गये साथ ही मुगलों को पचास लाख रुपये हर्जाने देने पड़े। 1622 ई में राजकुमार खुर्रम के विद्रोह के समय दक्षिण की स्थिति फिर चिन्ताजनक हो गई और 1627 ई में जहाँगीर की मृत्यु तक दक्षिण में मुगल राज्य को सुदृढ़ता प्राप्त नहीं हो सकी।

कुछ इतिहासकार जहाँगीर की दक्षिण नीति को असफल मानते हैं। उनके अनुसार जहाँगीर को राज्य के मामलों में समय देने का अवसर नहीं था क्योंकि वह विलासी स्वभाव का व्यक्ति था। सतीशचन्द्र ने उपरोक्त मंतव्य का खंडन किया है। उनके अनुसार अकबर एवं जहाँगीर के समय में दक्षिण नीति का उद्देश्य सीमित विस्तार था। दोनों ने अहमदनगर को राज्य को दक्षिण में बफर स्टेट (बीच का राज्य) के रूप में बनाये रखने को ही लाभदायक समझा। संचार के साधनों एवं आवागमन की सुविधाओं के अभाव में सुदूर दक्षिण के राज्यों का विलय संभव नहीं था अतः दोनों ने इसे जीतने का प्रयास नहीं किया।

वैसे तो शाहजहाँ के काल में भी सीमित विस्तार की नीति बनी रही लेकिन इसका क्षेत्र कुछ विस्तृत हो गया। इसने अहमदनगर तक के क्षेत्र पर अधिकार करने का निश्चय किया। अकबर की नीति त्यागने के पीछे सबसे महत्वपूर्ण कारण यह था कि अहमदनगर अब एक तटस्थ या मित्र राज्य के रूप में रहने को तैयार नहीं था। द्वितीय अहमदनगर के विलय के बिना दक्षिण में मुगल सत्ता सुदृढ़ नहीं हो सकती थी इसलिए शाहजहाँ ने 1632 ई में मलिक अम्बर के पुत्र फतह खाँ के साथ संधि कर ली। फतह खाँ ने अहमदनगर के शासक की हत्या करा दी और शाहजहाँ की अधीनता स्वीकार कर ली। इसी ओर बीजापुरी सुल्तान का समर्थन पाकर मराठे शाहजी के नेतृत्व में मुगल सेना को चुनौती देने लगे।

शाहजहाँ ने अहमदनगर के विद्रोही अवशेषों को समाप्त करने के उद्देश्य से बीजापुर एवं गोलकुंडा को प्रभाव क्षेत्र में लाने का प्रयास किया। 1636 ई० में आक्रमण के बाद बीजापुर से संधि हुई जिसके द्वारा सुल्तान ने मुगलों की अधीनता स्वीकारी तथा युद्ध हर्जाना तथा वार्षिक नजराना देना स्वीकार किया। उसने गोलकुंडा पर आक्रमण न करने तथा मराठों के विरुद्ध सहयोग करने का आश्वासन दिया। बदले में उसे अहमदनगर के कुछ क्षेत्र मिले। गोलकुंडा ने भी 1636 की संधि के तहत मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली तथा वार्षिक नजराना देने का आश्वासन दिया। बदले में मुगलों ने बीजापुर से उसकी सुरक्षा का आश्वासन दिया। 1656 तक यह स्थिति बनी रही। दक्षिण के राज्यों ने सुदूर दक्षिण के क्षेत्रों को जीतकर अपनी स्थिति सुदृढ़ की। इसी समय बीजापुर में शाहजी एवं गोलकुंडा में मीर जुमला जैसे लोगों का प्रभाव बढ़ रहा था जो चिंता का सबब था। दूसरी ओर शाहजहाँ को मध्य एशियाई अभियानों में विशेष सफलता नहीं मिली अतएव अब दक्षिण की ओर ही विस्तार संभव था दूसरे आर्थिक कारणों से कोरोमंडल तट पर अधिकार अधिक लाभदायक था। इस कारण शाहजहाँ के शासनकाल के अंतिम वर्षों में यह नीति बदल गयी। औरंगजेब जो उस समय दक्षिण का सूबेदार था बीजापुर और गोलकुंडा के विलय के पक्ष में था लेकिन दारा के हस्तक्षेप के कारण वह असफल रहा। तो भी औरंगजेब ने 1636 के संधि के प्रावधानों के उलट बीजापुर से कल्याणी तथा बीदर एवं गोलकुंडा से रामगीर का क्षेत्र छिन लिया तथा मुगलों की तटस्थता के कारण बीजापुर एवं गोलकुंडा को सुदूर दक्षिण एवं कर्नाटक में विस्तार करने का अवसर प्राप्त हुआ था।

मुगलों की दक्षिण नीति में मौलिक परिवर्तन औरंगजेब के राज्यारोहण के बाद आया। अपने शासनकाल के आरंभिक

वर्षों में उसने उत्तरी भारत की समस्याओं की ओर ध्यान दिया अतः इस समय दक्षिण में उसकी अभिरुचि केवल उन क्षेत्रों की पुनः प्राप्ति तक ही सीमित थी। 1636 की संधि के तहत बीजापुर को प्राप्त हुये थे। इस चरण का अंत 1660 में हुआ। दूसरे चरण में उसने 1660 से 84 तक मराठों के दमन में व्यस्त रहा। तीसरा चरण जो 1686 में आरंभ हुआ इसमें उसका उद्देश्य बीजापुर एवं गोलकुंडा का विलय था।

औरंगजेब ने 1660 में शाइस्ता खाँ को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया और उसे शिवाजी के दमन का दायित्व सौंपा। इस समय शिवाजी ने बीजापुरी सुल्तान की सेना को पराजित कर उसके सेनापति अफजल खाँ का वध कर दिया था। शाइस्ता खाँ को भी शिवाजी के विरुद्ध कोई विशेष सफलता नहीं मिली। अतएव राजा जयसिंह को दक्षिण भेजा गया जिन्होंने शिवाजी को पुरन्दर की संधि करने को बाध्य किया। शिवाजी व्यापक समझौते के लिये दिल्ली आया। इसी बीच जयसिंह ने बीजापुर पर असफल आक्रमण किया। दुर्भाग्यवश शिवाजी और औरंगजेब के बीच कोई समझौता नहीं हो सका और वह बंदी बना लिया गया। शिवाजी कैद से निकल भागने में सफल रहा। तभी औरंगजेब के सामने राजपूतों का विद्रोह एवं राजकुमार अकबर का विद्रोह उपस्थित हुआ जिसपर वह 1681 तक काबू पा लिया। लेकिन मराठों को कुचलने में वह असफल रहा, 1680 में शिवाजी की मृत्यु से उसे मराठों की समस्या से कुछ समय के लिये राहत मिली। लेकिन यह ध्यातव्य है कि यह अल्पकालीन राहत थी एवं संघर्ष शीघ्र प्रारंभ हो गई।

बीजापुर पर अपने प्रभाव को बनाये रखने में असफल होने पर औरंगजेब उसे जीतने का निश्चय किया। 1686 ई. में बीजापुर के क्षेत्र से होकर सेना के गुजरने को लेकर युद्ध आरंभ हुआ। एक वर्ष के युद्ध के बाद गोलकुंडा की बारी आई। अनेक कारणों से मुगलों के साथ इसके सम्बन्ध पहले ही खराब हो चुके थे। बीजापुर के साथ युद्ध में

जब गोलकुंडा ने बीजापुर का समर्थन किया तो औरंगजेब ने उसे भी जीत लेने का निर्णय लिया। एक संक्षिप्त युद्ध के बाद 1687 तक गोलकुंडा मुगल साम्राज्य का अंग बन गया।

अब ऐसा लगने लगा कि मुगलों ने दक्षिण में अपने उद्देश्य प्राप्त कर लिये लेकिन यह द्रष्टव्य है कि भले ही मुगल साम्राज्य इस विस्तार से अपने चरमोत्कर्ष तक पहुँच गया वहीं उसके पतन का मार्ग भी प्रशस्त हो गया। मुगलों ने दक्षिण विजय के लिए एक विशाल सेना का निर्माण किया जिसे बनाये रखने के लिये करों में वृद्धि करनी पड़ी। दूसरे लगभग एक शताब्दी तक दक्षिण में संघर्ष चलता रहा और इस क्रम में मुगलों को धन-जन की क्षति उठानी पड़ी। आर्थिक साधन जुटाने के लिये करों का बोझ बढ़ाया गया जिससे जन साधारण में असंतोष फैला एवं विभिन्न क्षेत्रों में विद्रोह भड़क उठे।

अकबर एवं जहाँगीर की सीमित विस्तार की नीति में शाहजहाँ द्वारा संशोधन की नीति लाभदायक सिद्ध नहीं हुई। 1636 ई० की सन्धि की अवहेलना कर शाहजहाँ ने बीजापुर एवं गोलकुंडा का विश्वास खो दिया। आगे चलकर इन राज्यों के असहयोग के कारण मराठों की समस्या से निबटने में कठिनाई हुई।

औरंगजेब ने मराठों की समस्या के समाधान में भी दूरदर्शिता से काम नहीं लिया। उसने शिवाजी की शक्ति का सही अनुमान नहीं लगाया न ही वह मराठों के उत्कर्ष के सही स्वरूप को समझ सका। यदि अकबर की राजपूत नीति की भाँति वह मराठों के साथ उदारता एवं सहयोग की नीति अपनाता तो मुगल राज्य दक्षिण में स्थायी रूप से सुदृढ़ता प्राप्त कर सकता था। 1689 ई० में उसके द्वारा शंभाजी की हत्या भी अदूरदर्शिता पूर्ण थी। इससे मराठा शक्ति का विस्तार रुक नहीं सका बल्कि एक ऐसा नेता समाप्त हो गया जिसके साथ मुगल शासक समझौता कर सकता था। इसके विपरीत दक्षिणी राज्यों ने मराठों का मुगलों के विरुद्ध उपयोग किया।

औरंगजेब द्वारा बीजापुर एवं गोलकुंडा की विजय मुगल साम्राज्य के लिये घातक सिद्ध हुई। लेकिन इसका पूरा दोष औरंगजेब को नहीं दिया जा सकता। दक्षिण की ओर विस्तार के पहले कदम ने ही इस अभियान को आवश्यक बना दिया। विस्तार का क्रम निरंतर चलता है इसे बीच में नहीं रोका जा सकता। अकबर की सीमित विस्तार की नीति का परित्याग ही मुगल साम्राज्य के पतन की ओर पहला कदम था। अहमदनगर के विलय के पश्चात् बीजापुर या गोलकुंडा का विलय अवश्यंभावी था। लेकिन इस क्रम में अर्द्धशताब्दी से अधिक समय लगा और इस अभियान में निरंतर चलने वाले युद्धों ने मुगल साम्राज्य को सैनिक एवं आर्थिक रूप से क्षीण कर दिया। दक्षिण से बड़ी संख्या में मुगल प्रशासन में प्रवेश करने वाले मनसबदारों के कारण जागीरदारी व्यवस्था का संकट और गंभीर हुआ तथा साम्राज्य का पतन तीव्र गति से हुआ। दक्षिण भारत में मुगलों का नियंत्रण भी दीर्घकालीन सिद्ध नहीं हुआ। मराठों के अतिरिक्त अन्य विरोधी शक्तियाँ भी दक्षिण भारत में मुगल सत्ता की जड़ में सक्रिय हो गई। औरंगजेब की मृत्यु के दो दशक के भीतर ही निजामुल मुल्क ने दक्षिण में स्वतंत्र सत्ता ग्रहण कर ली। दूसरी ओर दक्षिण की समस्या में सुल्तान की व्यस्तता ने उत्तर भारत में भी साम्राज्य के विघटन को प्रत्यावित किया। अतः निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि मुगलों की दक्षिण नीति असफल सिद्ध हुई।